गणित से क्यूँ डरना ?

रजनी द्विवेदी

गणित सीखने की प्रक्रिया बच्चों के संज्ञानात्मक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया का हिस्सा है। आसपास के साथ अन्तःक्रिया ही गणित को सीखने का साधन बनती है। लेकिन अकसर गणित सीखने की प्रक्रिया इस तरह दुरूह, अप्रिय और डरावनी हो जाती है कि गणित विषय से ही एक दूरी-सी बन जाती है। शुरुआत से ही इस विषय से दोस्ती, अपनापन और सहजता बनाए जाने की ज़रूरत है। लेखिका ने अपने आलेख में आम जीवन के सामान्य उदाहरणों और व्यवहार से इन बातों पर विस्तार से बात की है। सं.

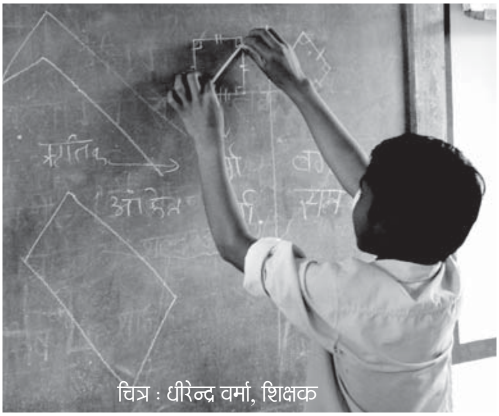
यह लेख मध्यम वर्गीय पारिवारिक पृष्ठभूमि के छोटे बच्चों के शुरुआती वर्षों में, गणित सीखने से सम्बन्धित है। शुरुआती उम्र के बच्चों के प्रश्नों, विभिन्न गतिविधियों में उनके मसरूफ़ रहते समय किए गए कुछ अवलोकन, उनकी बातचीत को अलग-अलग अवसरों पर समझने की कोशिश करते हुए उनकी गणित सीखने के बारे में मेरी जो समझ बनी है उसको कलमबद्ध करने का प्रयास मैंने इस लेख में किया है। इसमें हाल ही के कुछ अवलोकन भी शामिल हैं और कुछ पुराने नोट्स की भी मदद ली है। लेख के दो हिस्से हैं। पहले हिस्से में बातचीत है कि बच्चे क्या-क्या करते हैं और इस करने में गणित शामिल होता है या नहीं, और अगर शामिल है तो कैसा गणित शामिल होता है और इसे कहाँ-कहाँ व कैसे-कैसे देखा जा सकता है। अगले हिस्से में प्रश्न है कि यदि बच्चे में गणित सीखने की कुछ बुनियादी क्षमता होती है तो गणित का डर बच्चों में पैदा कैसे होता है और कैसे बढ़ता जाता है। इन बिन्दुओं पर बात करते हुए गणित सीखने-सिखाने में वयस्कों की भूमिका के बारे में भी चर्चा है।

बच्चे और गणित की अवधारणाएँ

एक औसत बच्चा अपनी उम्र के अनुसार क्या-क्या सीख जाता है, इस बारे में काफ़ी शोध हुए हैं। ये शोध बच्चों की सीखने की क्षमताओं के बारे में एक व्यापक दृष्टि देते हैं। उदाहरण के तौर पर, दो से ढाई साल तक आते-आते एक औसत बच्चा शारीरिक रूप से इतना सक्षम होगा कि वह चलने लगेगा। आसपास के बच्चों को देखने पर भी हमें ऐसे कई अनुभव मिल जाएँगे जो इसकी पुष्टि करेंगे। इसी तरह अमूर्त अवधारणाओं से अन्तःक्रिया कर इन अवधारणाओं के विभिन्न पहलुओं को समझना भी बच्चे काफ़ी जल्दी शुरू कर देते हैं। छोटे बच्चों की इन अन्तःक्रियाओं व इनमें काम ली जाने वाली विभिन्न क्षमताओं पर वयस्कों का ध्यान अकसर नहीं जाता, या जो थोड़ा बहुत जाता भी है तो उसे वयस्क कुछ ख़ास महत्त्व नहीं देते है।

उदाहरण के लिए, 12 से 14 महीने का बच्चा अपनी समझ से यह अच्छी तरह जानता है कि किस और कितनी ऊँचाई पर वह ख़ुद चढ़ सकता है, किस ऊँचाई से उतरने के लिए

उसके ख़ुद के प्रयास काफ़ी होंगे, और कहाँ उसे किसी बड़े की मदद ज़रूरत पड़ेगी ही? यह बच्चा घर की विभिन्न जगहों को भी जानने लगता है। माँ कहाँ हो सकती है, कोई चीज़ कहाँ हो सकती है, बाहर जाने का दरवाज़ा कौन-सा है, ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ किस तरफ़ हैं? ऐसी बहुत-सी समझ बच्चा अर्जित कर लेता है। इसे दूसरे ढंग से कहूँ तो बच्चे के दिमाग़ में घर की विभिन्न जगहों का एक मानसिक ख़ाका बन जाता है, और यह ख़ाका इतना पक्का होता है कि यदि उसे माँ के पास या बहन या किसी और वयस्क अथवा साथी के पास जाना है तो वह रुक कर सोचता नहीं है बल्कि दौड़कर चला जाता है।



चित्र : धीरेन्द्र वर्मा, शिक्षक

एक वयस्क की दृष्टि से सोचने पर यह काफ़ी आसान लगता है। लेकिन यदि यह सोचें कि एक नई-सी जगह पर जब हम जाते हैं, या अपने ही कस्बे या शहर में जब किसी नए पते पर जाते हैं तो हमें किस तरह की परेशानी होती है, वो भी तब, जब हमारे पास काफ़ी संकेत होते हैं। अगर दोनों परिस्थितियों को साथ रखकर सोचते हैं तो बच्चों की इस क्षमता के स्वरूप का अहसास होता है।

जगह की समझ गणित की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है और यह आगे बढ़ते-बढ़ते त्रिकोणमिति, ज्यामिति, निर्देशांक ज्यामिति, क्षेत्रमिति, सममिति, नक़्शे बनाना व पढ़ना और टोपोलॉजी तक जाती है। इन सब बाद की अवधारणाओं की बुनियाद इन्हीं स्थानीय सम्बन्धों की अवधारणाओं में है जिनकी समझ इतनी छोटी उम्र से होने लगती है। इसके कई उदाहरण आप अपने आसपास देख सकते हैं। इसी उम्र में बच्चे अलग-अलग वस्तुओं की आकृतियों, कौन-सी चीज़ ज़्यादा भारी है कौन-सी कम, क्या चीज़ बड़ी है क्या छोटी, क्या दूर है क्या पास? की समझ भी विकसित करने लगते हैं। इस उम्र के बच्चे बता नहीं पाते लेकिन उनकी क्रियाओं से यह साफ़ हो जाता है कि वे इस समझ की ओर बढ़ रहे हैं।

यह कह सकते हैं किसी अमूर्त अवधारणा की समझ बनाने की प्रक्रिया की शुरुआत स्कूल आने से काफ़ी पहले शुरू हो जाती है। जैसे-जैसे बच्चे का शारीरिक विकास होता है, उसकी गतिविधियाँ बढ़ने लगती हैं और दायरा भी विस्तृत होता जाता है। 4-5 साल की उम्र तक आते-आते बच्चे जगह की और बेहतर समझ विकसित कर लेते हैं; आसपास के इलाक़ों, घरों, गलियों और मोहल्लों का एक ख़ाका भी उनके पास होता जाता है। उनके बनाए चित्रों में भी जगह की यह समझ साफ़ दिखती है। इसी तरह आकृतियों और उनके माप की समझ वे अर्जित कर लेते हैं। वे अच्छे से समझते हैं कि थाली, कटोरी और गिलास व अन्य बर्तनों में फ़र्क़ है, गेंद और चूड़ी में फ़र्क़ है, गेंद लुढ़कती है और चूड़ी, कटोरी या थाली को लुढ़काने के लिए उन्हें किसी ख़ास तरह से ज़मीन पर रखना होता है। यह भी कि यदि सतह सीधी होगी तो गेंद बिना बल के नहीं लुढ़केगी और तीव्र ढलान पर बहुत-सी चीज़ें लुढ़क जाएँगी। इसी तरह खिड़की और दरवाज़े के आकार और माप में फ़र्क़, चाँद का गोल होना, उसका घटना-बढ़ना और उसके अलग-अलग आकार भी ऐसे मसले हैं जो बच्चों को आकर्षित करते हैं। बाल्टी में ज़्यादा पानी आएगा या मग में ज़्यादा पानी आएगा या कटोरी में, इसी तरह गिलास आधा भरा है या पूरा, या पूरे से थोड़ा कम।

इसी तरह संख्या की बुनियादी समझ भी वे अर्जित कर लेते हैं, जैसे– स्कूल आने से पहले

बच्चे यह समझने लगते हैं कि संख्याएँ होती हैं, और चीज़े कम हैं या ज़्यादा पता करने के लिए इन्हें काम में लिया जाता है। हो सकता है कुछ बच्चे 1 से 5 तक ही जानें, लेकिन कुछ अन्य इससे आगे की गिनती और गिनना भी जानते हों। हाँ, यह ज़रूरी नहीं कि वे संख्या के 1 + 1 के पैटर्न को जानते हों, या इन संख्याओं के संख्यांकों को लिख सकते हों। जैसे– बच्चे अमूमन जानते हैं कि मैं अमुक बच्चे से बड़ा हूँ, और अमुक से छोटा। मैं बड़ा हूँ क्योंकि 5 साल का हूँ और वह छोटा है क्योंकि एक साल का है। या फिर मेरे पास 3 रोटी हैं और तेरे पास 2। तेरे पास 2 पेंसिल हैं और इसी तरह की तमाम बातें जो उनके आसपास हो रही हैं... आदि। वंचित वर्ग के तबक़ों से आने वाले इस उम्र के बच्चे तो गणित की और भी बहुत-सी अवधारणाओं की समझ अर्जित कर लेते हैं क्योंकि उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बहुत-से ऐसे काम शामिल होते हैं जिनमें गणित होता है, जैसे– रोज़ का सामान रोज़ ख़रीदना, माता-पिता की सब्ज़ी बेचने में मदद करना, वग़ैरह। हालाँकि मैंने इस पर्चे में इस बारे में बात नहीं की है। पर इसी अंक में शामिल एक लेख में इस सन्दर्भ में बातचीत है।



चित्र : संदीप दिवाकर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल

गणित के प्रति असहजता और उससे डर

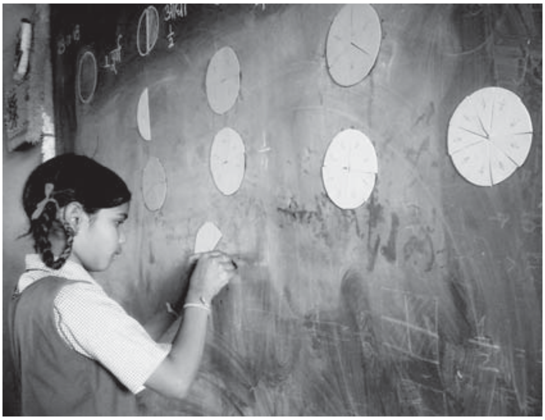
गणित के प्रति असहजता जाने-अनजाने निर्मित होती जाती है। अकसर गणित से जुड़े मसलों पर वयस्कों के साथ बच्चों की ज़्यादा बातचीत नहीं हो पाती। इसके अलावा, गणित को बार-बार हौवा, मुश्किल, समझ में न आने वाला विषय बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। यह काम स्कूल में भी होता है और घर में भी। एक ओर तो गणित कि छवि जटिल विषय के रूप में और सीख पाने वाले की छवि होशियार के रूप में स्थापित की जाती है, वहीं दूसरी ओर उसपर सहज बातचीत नहीं होती और जो थोड़े बहुत मौक़े आते भी हैं उन्हें नज़रअन्दाज कर दिया जाता है।

घर के सन्दर्भ में कुछ उदाहरण ऊपर वाले हिस्से में भी आए हैं। जब बच्चे थोड़े सक्षम होने लगते हैं तो कुछ शुरुआती खोजबीन स्वयं करते हैं, जैसे– अलग-अलग तरह की चीज़ों से खेलना, छोटा-बड़ा पत्थर, या पत्तों और पत्थरों की आकृति, या किस दिशा में किसका घर है, आदि। इस खोजबीन के चलते धीरे-धीरे उनकी समझ बनती चली जाती है। इससे आगे के प्रश्न व जिज्ञासाएँ भी बनती हैं और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है भाषा का विकास होता है व प्रश्न भी कुछ सटीक और स्पष्ट होने लगते हैं। 4-5 साल के बच्चे ऐसे कथन समझते हैं और उपयोग भी करते हैं, जैसे– देर से क्यों आए, अब शाम होने वाली है, छोटे बच्चे के छोटे जूते और बड़े बच्चे के बड़े, इस डिब्बे में ज़्यादा दाल आएगी क्योंकि ये बड़ा है। वे ऐसे प्रश्न पूछने की भी क्षमता रखते हैं कि इस घड़ी में ये क्या लिखा है, क्यों लिखा है (रोमन संख्याओं को देखकर) या इस घड़ी में 1, 2, ... क्यों नहीं लिखा है, जो वो जानता है? इस पट्टी पर ये निशान क्यों बने हैं, यह क्या काम आता है (इंची टेप, स्केल), ये घर इस वाले घर से बड़ा है, कितना बड़ा है, आप दो दिन बाद आओगे, यानी सुबह, फिर रात, फिर सुबह और फिर रात, एवं फिर सुबह और फिर रात? (वह दो दिन के समय को पता लगाने की कोशिश में है)। बच्चों के ऐसे कुछ प्रश्नों का हम सीधा जवाब दे देते हैं, और कुछ को अनदेखा कर देते हैं। इसके कई कारण होते हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारण है कि अधिकांश वयस्क बच्चे को 'बच्चा' ही मानते हैं, उसे एक सोचने वाला

इंसान नहीं मानते। यह नहीं मानते कि वह दुनिया से अन्तःक्रिया करने, उसको खोजने, समझने और वाज़िब सवाल पूछने की क्षमता रखता है।

हालाँकि वयस्क ज़वाब देते हैं, लेकिन ज़वाब कई नज़रियों से आते हैं... और इसीलिए ज़वाब में फ़र्क़ होता है। कभी सवाल को बग़ैर ध्यान से सुने ज़वाब दे दिया जाता है जैसे यह सवाल कि दादा बड़े हैं या दादी? ज़वाब : दादा। पर पापा दादा से बड़े हैं? ज़वाब : नहीं पापा दादा से छोटे। (यहाँ बच्ची लम्बाई के आधार पर कह रही है)

कई बार हम ऐसे ज़वाब देते है जो हमारे ज्ञान को दर्शाते हैं लेकिन बच्चे को अपने प्रश्न के कथन को समझने में मदद नहीं करते। जैसे एक सात साल के बच्चे ने 22-8 हल करते हुए पूछा कि कैसे करूँ? तो जवाब था कि इकाई छोटी है तो अब दहाई से एक लो अब हो गया दस... अब यह सवाल बिना इकाई दहाई से हल हो सकता है। संख्या की समझ काफ़ी है।



चित्र : संगीता पिपले, शिक्षक

हालाँकि कई बार तो वयस्कों को बच्चों के सवाल इसलिए भी छोड़ने पड़ते हैं कि उनके उत्तर भी आसान नहीं हैं। तो यह सोच कि अभी बच्चा है इसी वजह से उसकी बात व सवालों को अनदेखा भी करते हैं और उसपर समय भी नहीं लगाते और कभी स्तर अधिक बताते हैं। इस तरह यह नज़रिया बच्चे के साथ बराबरी की बातचीत करने की राह में रोड़ा बनता है– गणित में भी और अन्य विषयों में भी।

इसके साथ-साथ गणित की अवधारणाओं में यह भी होता है कि वयस्क इनपर वैसी सामान्य बातचीत नहीं कर पाते जैसी कि भाषा और पर्यावरण से सम्बन्धित विषयों पर वे कुछ हद तक कर पाते हैं।

एक उदाहरण से इसे समझते हैं जो मैंने ख़ुद देखा। छह साल का मध्यम वर्गीय परिवार का एक बच्चा था। घर में चीज़ों को खोजते-खोजते उसे एक इंची टेप मिला। उसने वयस्क से पूछा, "यह क्या है?" जवाब आया, "इंची टेप है।" कुछ देर तक वह उससे खेलता रहा, पहले उसे खोला फिर उसे तह किया और कुछ देर बाद दूसरे वयस्क के पास पहुँचकर पूछा, "यह क्या है?" जवाब आया, "इंची टेप है।" बच्चे का अगला सवाल था, "क्या काम आता है?" जवाब, "कुछ नापने के काम आता है?" सवाल, "कैसे नापते हैं?" जवाब, "ये निशान लगे हैं, इनसे।" इस पूरी बातचीत में वयस्क की कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं थी। इस दौरान उन्होंने एक बार भी बच्चे की ओर नहीं देखा। बच्चा भी थक गया, उसे समझ आ गया कि वे और बातचीत नहीं चाहते। हम देख सकते हैं कि कुछ बातचीत हुई लेकिन ये ऐसी थी जिसके जवाब आगे की बातचीत को बढ़ावा नहीं देते।

ऐसा लग रहा था कि बच्चे के मन में बहुत-सी और बातें थीं, लेकिन उसे लगा कि वयस्कों की उनपर बातचीत व उसके उपयोग को खँगालने में ख़ास रुचि नहीं है। बच्चे के साथ इस मौक़े पर आगे काफ़ी बातचीत की जा सकती थी। उदाहरणार्थ, क्या ये निशान एक जैसे हैं, कैसे-कैसे हैं, क्या सभी बराबर दूरी पर हैं, इस टेप पर क्या-क्या लिखा है, चलो कुछ चीज़ें मापकर देखें कि कौन-सी छोटी हैं कौन-सी बड़ी, कैसे पता चला? आदि। यदि वयस्क उसपर लिखी इकाइयों को पढ़ भी दे तो कोई हर्ज़ नहीं है।

मूल बात यह है कि वह अन्तःक्रिया सहज रूप से आगे बढ़ सकती थी और उसमें बहुत-सी बातों का आदान-प्रदान हो सकता था। वयस्कों की बच्चों के साथ अन्तःक्रिया पर रवैए के बारे में एक और बात महत्त्वपूर्ण है। एक ओर तो वे बच्चों के कार्य में रुचि नहीं लेते, वहीं दूसरी ओर वे उनपर ख़ास चीज़ें सीखने का दबाव बनाते रहते हैं। बच्चे की जिज्ञासा के लिए उसके अपने प्रश्नों पर समझ बनाने को तवज्जो नहीं दी जाती। वहीं सिखाने का ज़बरन प्रयास अन्तःक्रिया को बच्चे के लिए बोझिल और असहज बना देता है। अतः इन सभी चर्चाओं में बच्चे के लिए सहजता होनी आवश्यक है, और यह भी ज़रूरी है कि कार्य व सवालों की बागडोर उसके हाथ में ही रहे। ज़रूरी बात यह है कि बच्चों के ऐसे छोटे-छोटे ख़ास रुझानों पर हम शुरू से ही ध्यान देना शुरू करें और जहाँ तक सम्भव हो, उनपर उनसे सार्थक बातचीत करें जिससे कि गणित सीखना स्वाभाविक प्रक्रियाओं का हिस्सा बन सके, बच्चे उसमें रुचि ले सकें और इस तरह की बातचीत होने पर असहज न महसूस करें। ऐसा हो सकता है कि सार्थक बातचीत के लिए वयस्कों को भी अपने स्तर पर और सीखने की ज़रूरत हो।

बच्चों को चित्र बनाना अच्छा लगता है, लेकिन उन्हें अकसर चित्र बनाने की स्वतंत्रता नहीं मिलती। स्कूल में तो बच्चों को बनाए गए चित्रों को कॉपी करने के लिए कहा ही जाता है, लेकिन घरों में भी उनको स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने को प्रोत्साहित किया जाता हो ऐसा होता नहीं है। और फिर उन चित्रों पर बातचीत भी नहीं होती। वो भी तब जब बच्चा आपको चित्र दिखाता है और पूछता है कि बताओ क्या बनाया है, कुछ समझ आ रहा है? जैसे– आगे दिया गया चित्र 7 साल के एक बच्चे ने बनाया है।

क्या आपको नहीं लगता कि इसपर ऐसी बात हो सकती है कि यह घर के आगे का हिस्सा है या पीछे का, क्यों कुछ पेड़ छोटे दिख रहे हैं कुछ बड़े, घर में कितनी खिड़कियाँ हैं, कितनी मंज़िल का घर है? आदि।

गणित सिखाने में थोपे गए कार्य व बच्चे से ऐसी अपेक्षाएँ कि वह उसके लिए निरर्थक चीज़ जल्दी से सीख ले, गणित को बोझिल बनाते है। इसमें यह भी अपेक्षा होती है कि बच्चे सीखने में समय न लगाएँ। औपचारिक ढाँचों में तो जल्दी न सीख पाने वालों को विभिन्न उपाधियाँ भी मिल जाती हैं। सिखाने में जो जल्दबाज़ी होती है उसके कुछ उदाहरण देखते हैं। उदाहरण काफ़ी आम हैं और हमारे आसपास होते ही



रहते हैं। गिनती से ही शुरू करते हैं। एक चार साल की बच्ची है, उसे गिनती सिखाई जा रही है, 1 से 10 तक की गिनती उससे लगभग रोज़ बुलवाई जाती है।... वह कहती है, "मुझे नहीं बोलना", लेकिन उससे कहा जाता है, "काफ़ी बड़ी हो गई है अब तक तो 10 तक आ जानी चाहिए... चलो बोलो।" पहले वह वयस्क के पीछे-पीछे बोलती है और फिर उससे ख़ुद बोलने को कहा जाता है।... वह 6 के आगे क्रम में गड़बड़ करती है और 7, 8 को छोड़कर सीधे ही 9, 10 बोल देती है। कहा जाता है, "अरे...

अभी तो किया था इतनी जल्दी भूल गई.... कब आएगा?''

इसी तरह लिखने का अभ्यास करवाते समय ऐसे कथन आते हैं, ''अरे, तुमने ये तीन लिखा है, एकदम उल्टा लिखा है। अभी तक तीन लिखना नहीं आता।... और ये, ये क्या लिखा है?'' बच्चा, ''ये नौ है।'' वयस्क, ''ऐसे लिखते हैं 9? चलो, अब 5 बार 3 लिखो और 5 बार 9, और हाँ, इस डिब्बे से बाहर नहीं जाना चाहिए। और अगली बार यह ग़लती नहीं होनी चाहिए।''

''चलो, 7 का पहाड़ा सुनाओ, जल्दी।'' बच्चा, ''7 एकम 7, 7 दुनी 14, 7 तिया 21, 7 चौके हम्म्।'' वयस्क, ''क्या होता है सात चौके?'' बच्चा, ''अम् अम् 27..., नहीं नहीं'', ''क्या होता है? नहीं आता? इतना भी नहीं आता।'' ''अम् अम्... 28... 28 होता है? नहीं-नहीं।'' ''तो कितना होता है?''

यह सब बच्चों में अपनी असक्षमता व गणित के प्रति भय का बीज डाल देते हैं। यह डर की शुरुआत भर है और जैसे हमने कहा, यह घर से ही शुरू हो जाती है और स्कूल में जारी रहती है। इसके अलावा जब भी कोई मेहमान आता है, बच्चों को कलाकारों की तरह अपने पात्र की भूमिका अदा करने को कहा जाता है। यह सुनाओ, यह करके दिखाओ, वग़ैरह-वग़ैरह।

स्कूल में गणित के प्रति डर

मैं अपनी गणित की कक्षाओं को याद करती हूँ तो पाती हूँ कि मेरे स्कूली दिनों में मुझे भी और कक्षा के बहुत-से दूसरे बच्चों को भी गणित से डर लगता था। अभी हाल ही में मैंने गणित पर आयोजित एक वेबिनार में हिस्सा लिया था वहाँ भी बहुत-से शिक्षकों का सवाल था कि गणित के प्रति डर क्यों है?

जब बच्चे स्कूल आते हैं तो वे कक्षाओं में हो रही सभी चीज़ों को सीखना चाहते हैं और सीखते भी हैं। बल्कि शुरुआती कक्षाओं, जैसे– कक्षा 2 और 3, आते-आते यह देखने में आता है कि बच्चे पढ़ने-लिखने की तुलना में कुछ गिनती और जोड़-बाक़ी सीख जाते हैं। जब बुनियादी गणितीय अवधारणाओं को, कुछ हद तक गणितीय अमूर्तता को, बच्चे सहजता से सीखने की क्षमता रखते हैं और सीख भी लेते हैं तो गड़बड़ कहाँ से शुरू होने लगती है?

पहली चीज़ जो इस सन्दर्भ में मुझे सोचने वाली लगी वह यह कि अधिकांश वयस्कों को भी गणित से डर लगता है। और हम अपना यह डर बच्चों में जाने-अनजाने हस्तान्तरित कर देते हैं, क्योंकि बच्चे सहज रूप से इतनी गणित करते हैं तो यह तो साफ़ है कि गणित से डर जन्मजात नहीं होता। शायद किसी भी तरह का डर जन्मजात नहीं होता। डर भी एक सामाजिक निर्मिति है, और गणित का डर भी एक सामाजिक निर्मिति है जिसमें घर, स्कूल, समाज, आदि शामिल हैं। बच्चे गणित को कुछ अलग-सा, दानव-सा न मानें, इसके लिए ज़रूरी है कि हम वयस्क गणित से न डरें और न ही यह नज़रिया रखें कि यह तो अलग-थलग है और सीखना मुश्किल है। जैसे– ऐसे कथन काफ़ी सुनने को मिलते हैं, ''अरे मुझे तो गणित नहीं आई तुम तो सीख लो।''

''गणित नहीं आया तो समझो कुछ नहीं आया।''

इस सन्दर्भ में दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु पाठ्यक्रम व गणित सीखने-सिखाने के तरीक़े से सम्बन्धित है।

स्कूल में गणित का पाठ्यक्रम निश्चित है। यह अपेक्षा है कि बच्चे को उस पाठ्यक्रम को जैसे-तैसे पूरा करना है। हालाँकि, कक्षा एक और दो के पाठ्यक्रम में गिनती और जोड़-बाक़ी व गुणा-भाग ही मुख्य रूप से शामिल होते हैं। कक्षा 1 के लिए दिए गए पूरे वर्ष में बच्चे बोल-बोल कर सिर्फ़ गिनती ही करते हैं, संख्या नाम उन्हें सौ तक याद भी हो जाते हैं, लिखना भी सीख लेते हैं, लिखते-लिखते वे यह भी देख लेते हैं कि 1 से 9 तक की संख्याएँ हर बार आ रही हैं, उन्हें 10, 20, 30, ... भी समझ आ जाता

है। हालाँकि, वे इतना कुछ ख़ुद कैसे समझ गए इस बारे में भी उनसे बात नहीं होती। वे सिर्फ़ बोलते और लिखते ही रहते हैं।

गणित सीखने में यह काफ़ी महत्त्वपूर्ण होता है कि बच्चे जो भी अवधारणा / उप अवधारणा सीख रहे हैं, उसके बीच सम्बन्धों को भी साथ-साथ ही खोजते चलें और इसका ध्यान शुरुआत से ही रखने से आगे भी बच्चों को गणित सीखने में मदद मिलती है। सम्बन्धों को खोज पाना, पैटर्न को देख पाना, यह अमूर्तिकरण की प्रक्रिया के ख़ास पहलू हैं। लेकिन गिनती सीखने की प्रक्रिया में इनपर ध्यान नहीं दिया जाता कि बच्चे इस पैटर्न को पकड़ पाएँ कि हर आगे आने वाला नम्बर पीछे वाले नम्बर से 1 अधिक होगा। वे संख्याओं के आपसी सम्बन्ध को समझ पाएँ, जैसे– 2 एक से एक बड़ा है, और 3 एक से दो बड़ा है, आदि। ये समझ इससे भी जुड़ती है कि 1 + 1 = 2 होगा और 2 + 1 = 3 होगा।

वैसे इन शुरुआती संख्याओं के बीच ये सम्बन्ध बच्चों को कुछ-कुछ पता भी होता है लेकिन इन सम्बन्धों के बारे में ऐसी बातचीत का अभाव होता है जिसे वे समझ पाएँ, और इस वजह से बच्चे संख्याओं की पुख़्ता समझ नहीं बना पाते। और तो और, बच्चे वर्षभर गिनती बोलते रहते हैं... कहने पर 1 से 100 तक सुना भी देते हैं, लेकिन 10 और 12 के बीच क्या संख्या आएगी, 10, 12 से कितना छोटा है, या 6, 5 से कितना बड़ा है? ऐसे सवालों के जवाब नहीं दे पाते। मुझे लगता है, शायद वे भी यह समझते होंगे कि सबकुछ आने के बाद भी वे जवाब नहीं दे पा रहे और यह भी कि वे यह जवाब क्यों नहीं दे पा रहे? यह एहसास भी उन्हें डराता होगा कि जो पूछा वे उसे बताने में असक्षम कैसे हो रहे हैं?


चित्र : हिमांशु खोले, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, सागर

इसी से जुड़ता है गणित की अवधारणाएँ सिखाने में ठोस का उपयोग। "गणित की प्रकृति अमूर्त है," यह कथन ठीक है। लेकिन "वह अमूर्त है इसलिए सीखना मुश्किल है," यह कथन ठीक नहीं है। बल्कि यह सोचना होगा कि अगर अमूर्त है तो शुरुआत से ही इसे सीखने-सिखाने के तरीक़े कैसे हों कि सीखने वाला अमूर्त अवधारणाओं को, सीखने की क्षमता को बेहतर करता चले। ठोस चीज़ों पर निर्भरता भी गणितीय अवधारणाओं के सीखने में रोड़ा बनती है। यह सोचने वाली बात है कि एक पाँच साल की बच्ची जब यह अच्छे से बता सकती है कि 5, 4 से बड़ा है, 10, 9 से बड़ा है। तो वह यह क्यों नहीं सीख सकती कि 4 में कितना जोड़ने पर पाँच मिलेगा? हम ठोस के उपयोग पर इतना ज़ोर दे देते हैं कि कक्षा में बच्चों से बातचीत की गुंजाइश कम रह जाती है। गणितीय अवधारणाओं पर बातचीत भी अमूर्तता तक जाने का एक तरीक़ा है, वो भी छोटी संख्याओं से ही... जैसे 4 में 1 जोड़ें तो क्या आएगा? 4 में 2 जोड़ने पर, ... 3, 4, ... 10 जोड़ने पर क्या आएगा? धीरे-धीरे बच्चे समझ जाते हैं कि यह पैटर्न कैसे बढ़ रहा है ऐसे ही कुछ और अभ्यास करने पर संख्याओं के पैटर्न की समझ पुख़्ता होती है और अमूर्तिकरण की क्षमता भी विकसित होती है। ऐसे कई अभ्यास हो सकते हैं? जैसे– 4 में 10 जोड़ने पर कितना होगा? और 5 में 10

जोड़ने पर कितना होगा... इसी तरह 6 में 10 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी... 7 में 10 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी।.... फिर ऐसे सवाल भी आ सकते हैं कि अगर 7 में 10 जोड़ने पर 17 मिलता है तो 7 में 9 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी और क्यों? और तब 7 में 8 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी।

ये कुर्सी सामने से ऐसी दिखती है, पीछे से देखने पर कैसी दिखेगी और गिलास यह कैसा दिखेगा। बच्चों की समझ के अनुसार संख्याओं से, चित्रों से, चीज़ों से ऐसे कई अभ्यास किए जा सकते हैं। ऐसे अभ्यासों के अभाव में ठोस इतने ठोस हो जाते हैं कि बच्चे संख्याओं को देखकर ही डरने लगते हैं।

एक और चीज़ जो गणित सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मुश्किल बनती है वह है, एक बुनियादी अवधारणा के बुनियादी पहलू पर समझ बनाने से पहले ही और कई अवधारणाओं की शुरुआत कर देना। बच्चे गिनती ठीक से समझे नहीं होते हैं और कक्षा में इकाई, दहाई की अवधारणा भी शुरू कर दी जाती है। चूँकि अधिकांशतः यह माना जाता है कि 10 से आगे बढ़ने के लिए स्थानीय मान आना ज़रूरी है, जबकि ऐसा है नहीं।

मैंने कई कक्षाओं में पाया है कि बच्चे जब जोड़ना सीख रहे होते हैं तो यह ज़रूरी समझा जाता है कि अगर उन्हें दो अंकों, या तीन अंकों की संख्याओं का जोड़ करना है, बिना हासिल वाला हो या हासिल वाला कुछ भी, तो वे हर संख्या में आए हर अंक पर इ., द. और सै. लिखें। यही नहीं, कि ऐसा लिखवा लिया जाता है बल्कि उससे आगे बढ़कर उनसे कहा यह जाता है कि पहले इ. के नीचे के अंकों को जोड़ो, फिर द. के नीचे के और फिर सै. के नीचे के अंकों को।... न तो उनसे यह बात की जाती है कि इ., द. और सै. क्यों लिखना है न ही यह कि वह पूरी-पूरी संख्याएँ पढ़ें न कि इकाई, दहाई के अंक। इसके अलावा, लिखवाने के बाद भी अपेक्षा यह रहती है कि वे संख्या को न देखें बल्कि अंक को देखें और उन्हें ही जोड़ें अथवा घटाएँ।

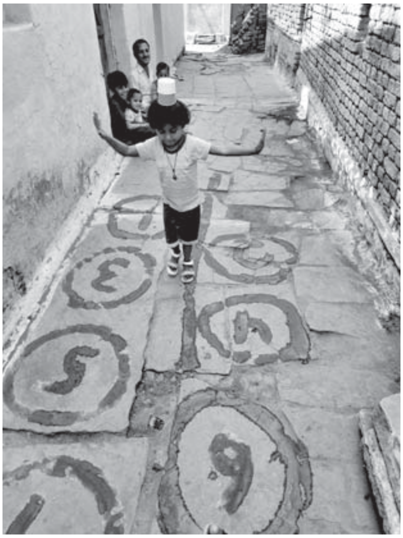
सिखाने की प्रक्रिया में सम्बन्धों को देख पाने की, पैटर्न को देख पाने, संख्याओं से खेल पाने, उनके बारे में बात कर पाने, व अमूर्तिकरण की अन्य क्षमताओं को एक-एक करके शुरुआत से ही कमज़ोर किया जाता है। जैसे– जो बच्चा गिनती सीखते-सीखते यह समझ जाता है कि 10 में 10 जोड़ने पर 20 और 20 में 10 जोड़ने पर 30 आता है, धीरे-धीरे वह यह भी समझ पाता है कि 19 में 10 जोड़ने पर 29 आता है और ऐसे ही कई पैटर्न बना सकते हैं। हर बार जोड़ करने के लिए लाइन बनाने और उँगलियों पर जोड़ करने की ज़रूरत नहीं है। यह भी कि अगर 2 + 3 = 5 होगा तो 5 - 3 = 2 होगा। इसे कॉपी में करने की ज़रूरत नहीं है। इस सबको कर पाने व इस सोच में आगे बढ़ने के लिए उन्हें आपस में बात करने और अपने तरीक़े से सोचने देने की ज़रूरत है। जैसे– कक्षा दो में बच्चों को सवाल दिए जा सकते हैं कि 23 में 56 जोड़ना है... सब अपने-अपने तरीक़े से जोड़ें और बताएँ कि किसने किस तरीक़े से सवाल किया, किसका उत्तर सही लगता है, और कैसे पता लगाएँगे कि हल सही है? कई जगह दिए गए सुझाव के अनुरूप भी सवाल बनाएँ। इसको भी इस्तेमाल करके देखा जा सकता है



चित्र : निशांत गहोई

कि वे ऐसे सवाल बना सकते हैं अथवा नहीं? उनसे कह सकते हैं कि चलो, सरल-से-सरल सवाल बनाएँ, अब कुछ कठिन सवाल बनाएँ, क्यों उन्हें ये सवाल कठिन और सरल लगते हैं? आदि।

जब बच्चे गिनती और बुनियादी जोड़ ही ठीक से नहीं सीख पाते तो आगे की अवधारणाएँ भी धीरे-धीरे मुश्किल होने लगती हैं। *नई शिक्षा नीति 2020* में बुनियादी संख्या ज्ञान पर ख़ास ज़ोर देने का कारण भी यही है कि यदि बुनियादी गणित की अवधारणाओं को सीखने में बच्चों को पर्याप्त समय दिया जाएगा व उन्हें वयस्कों के डर से ओत-प्रोत शार्टकट को छोड़ने में मदद की जाएगी, तब ही बच्चों में गणित के प्रति जो डर है शायद वह भी ख़त्म होगा।


चित्र : तरन्नुम निशा

सारांश

सीखना एक रुचिकर प्रक्रिया है। बच्चे नई-नई खोज कर उनके बारे में नई बातें सीखने में एक स्वाभाविक दिलचस्पी रखते हैं। यदि हम चाहते हैं कि चीज़ों को सीखने में उनकी स्वाभाविक दिलचस्पी बनी रहे तो उनके साथ स्वाभाविक तरीक़े से काम करना ही एक तरीक़ा है। घरों में, कक्षाओं में गणित की जिस तरह से शुरुआत होती है वह काफ़ी अस्वाभाविक-सी लगती है, जैसे– पहले कुछ वर्षों तक बस गिनती को लिखते और बोलते रहना। यदि बच्चे पहली कक्षा में 1 से 20 या 30 तक की संख्याओं को ही अच्छे से समझ लें यानी उनके बीच सम्बन्ध, उनसे बनने वाले विभिन्न पैटर्न समझ लें, संख्याओं से जुड़ाव बना लें तो आगे का सफ़र उनके लिए एक हद तक काफ़ी ख़ुशनुमा बन सकता है। इन संख्याओं के साथ काफ़ी कुछ है करने के लिए।... इसके अलावा हम वयस्कों को भी गणित के प्रति बने हमारे नज़रिए को पुनः देखना और संशोधित करना होगा, यह संशोधन स्वयं के लिए भी और बच्चों के लिए भी करना होगा। यह ध्यान रखना होगा कि गणित डरने और डराने वाला विषय नहीं है। सिर्फ़ यह अन्य विषयों की तुलना में कुछ ज़्यादा अमूर्त है। लेकिन गणित ख़ासकर बुनियादी और प्रारम्भिक स्तर का गणित इतना अमूर्त नहीं है कि हर इंसान उसे थोड़ा-सा जूझने पर न समझ पाए।

सन्दर्भ

1. महेश झरबड़े और रुबीना खान, *जीवन में गणित, पाठशाला भीतर और बाहर* अंक 11

2. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*

रजनी द्विवेदी *पाठशाला* के सम्पादन कार्य से जुड़ी हैं। लम्बे समय तक विद्या भवन उदयपुर में शिक्षा पर कार्य किया है। भाषा और भाषा शिक्षण में विशेष दिलचस्पी है। पत्रिकाओं में शिक्षा पर लेख लिखती रहती हैं। आपने किताब *भाषा का बुनियादी तानाबाना* के लेखों का चयन और सम्पादन किया है।

सम्पर्क : rajni.dwivedi@azimpremjifoundation.org